मैथिली

नीतिपद्यावली

पं० श्रीजनार्दन [illegible] जनसीदन'

पुस्तकभंडार, पटना

विषय-सूची

***

मुद्रक : श्री हिमालय-प्रेस, पटना—८०००४

श्रीगणेशाय नमः ।

मंगलाचरण

नीतिनिपुण निष्काम भक्तप्रिय कोटि-काम-अभिराम ।
केशव कमलनयन वनमाली पीतवसन घनश्याम ॥
गीता-ज्ञान-विधायक नायक अनुपम नन्दकिशोर ।
बसथु निरन्तर हृदय बीच से प्रेम रसिक चितचोर ॥१॥

२. ईश्वर-भक्ति

ईश्वर भक्तिक पाठ प्रथम नित समुचित शिशुकैं देथि ।
हो अंकित हरिभक्ति जाहिसौं से सुरीति गहि लेथि ॥
भगवानक गुणगान कराएब बुझथि गुरु निज धर्म ।
बालकगण उपदेश ग्रहण कए करथि सदा सत्कर्म ॥२॥

अछि कर्त्तव्य मनुष्यक सबसँ बढ़ि हरिपद अनुराग ।
भगवद्-भजन करब नित मनसँ कए आलस्यक त्याग ॥
मानव-जन्म सफल निज बूझब तैखन जीवन धन्य ।
उपजए हृदय बीच निर्हेतुक हरिपद-भक्ति अनन्य ॥३॥

जनिक त्रिगुण मायासँ निर्मित अछि अनित्य संसार ।
थिक अज्ञेय जनिक विज्ञहुँकैं लीला अगम अपार ॥
हुनक नाम जपि रूप अनूपक धरब हृदयमे ध्यान ।
त्रिविध ताप सभ पाप कटित भए उपजत मनमे ज्ञान ॥४॥

नित उठि प्रात समय जगदीशक भक्ति-सहित जपि नाम ।
हरब सचेत त्यागि ईर्ष्या मद करब काज निष्काम ॥
कोनहुँ कर्म करी श्रद्धासँ हरि अर्पण कय नित्य ।
भव-बन्धन कटि जाएत निश्चय हएब सदा कृतकृत्य ॥५॥

३. सुयोग्य राजा

ईश्वर अंश विशेष नृपति छथि अछि ई शास्त्र प्रमाण ।
नीति सहित पालथि वसुधाकैं करथि प्रजागन त्राण ।।
अपराधीकैं दण्ड देथि निर्दोष न पावथि दण्ड ।
न्याय करथि आलस्य-रहित भए भोगथि राज्य अखण्ड ।।६।।

प्रजागणक उन्नति पर राखथि नियम सहित नित ध्यान ।
देथि न कहियो दुःख प्रजाकैं हरथि हुनक अज्ञान ।।
सकल कलामे निपुण होथि नित प्रात करथि सुख-सिद्धि ।
थिकथि योग्य राजा जे चाहथि सदा धर्म धनवृद्धि ।।७।।

प्रजागणक सुनि आर्तनादकैं करथि न मनमे क्रोध ।
दै आश्वासन हरथि हुनक दुख देथि दुराय विरोध ।।
बूझथि पता लगावथि सत्यक स्वयं चतुर चर राखि ।
प्रकट करथि नहि ककरहुसँ निज मन्त्र मनोगत भाखि ।।८।।

राज-काज निज अपनहुँ देखथि, त्यागि व्यसन आलस्य ।
के अछि हित के अहित ताहि पर राखथि ध्यान अवश्य ।।
के सेवक विश्वासपात्र अछि के अछि विश्वसनीय ।
के वेतन-वृद्धिक अधिकारी के अछि दुर्दमनीय ।।९।।

के अछि कार्यकुशल शुभचिन्तक के अछि वचनक वीर ।
के खुशामदी स्वार्थ-निरत अछि के निःस्वार्थ सुधीर ।।
के परनिन्दक पिशुन पापरत के निष्कारण क्रोधी ।
के निष्कपट भृत्य के वंचक के अछि राज-विरोधी ।।१०।।

गुप्त रीतिसँ एकर मनहि-मन सतत करथि नृप जाँच ।
तकरा हित बूझथि जकरामे राजभक्ति हो साँच ॥
काज करए राजक हितचिन्तक से पाबय बकसीस।
दुष्ट आलसी अल्हड़ सबकैं हटा देथि अवनीश ॥११॥

जे गुण बूझि करथि गुणवानक यथायोग्य सम्मान ।
अतिथि विमुख नहि जाथि जतयसँ पाबि नकारक दान ॥
विद्या-धर्म प्रचार हेतु नित करथि विशेष प्रयत्न ।
दान देथि समुचित याचककैं से सुयोग्य नृपरत्न ॥१२॥

४. अयोग्य राजा

निर्भर रहथि सदा मन्त्री पर, जानथि नहि नृपनीति ।
पढ़ल-लिखल किछु मात्र दम्भवश पालथि नहि कुलरीति ॥
सकल चित्तकैं व्यसनहिमे जे संतत रहथि लगाय ।
से अयोग्य नृप तथ्य एक दिन सम्पति देथि गमाय ॥१३॥

की आमद की खर्च ताहि पर देथि न कहियो ध्यान ।
चिरसंचित धन रत्न आदिहुक करथि न अनुसंधान ॥
शरणागतक हरथि नहि संकट त्यागि देथि निज धर्म ।
की अकार्य की कार्य न बूझथि करथि विविध अपकर्म ॥१४॥

चाकर बहु राखथि बिन काजहुँ करथि न समय विचार ।
गणिका-प्रेम विवश, बनवाबथि वृथा विविध आगार ॥
खर्च करथि आमदसँ अनुदिन अधिक-अधिक ऋण आनि ।
प्रमदासक्त रहथि नृप तनिका, ली अयोग्य अनुमानि ॥१५॥

सुनथि पुकार न दीन-जनक, रहि बुद्धिविहीनक संग ।
मद्यपान कए माति कुमित्रक संग जमावथि रंग ॥
गुणिजनसँ रहि विमुख मूर्खकैं सम्मुख आसन देथि ।
रहितहुँ आँखि दिवान्ध वनल से जगमे अपयश लेथि ॥१६॥

जनिक सभामे आगत बुधजन नहि पावथि सम्मान ।
अभ्यागत पावथि नहि भोजन, नहि याचकजन दान ॥
व्यभिचारादिक निन्द्य कर्ममे करथि धनक संहार ।
से अयोग्य नृप अन्त कालमे भोगथि दुःख अपार ॥१७॥

सचिव हितैषिक कहल न मानथि देथि प्रजाकैं कष्ट ।
स्वयं कीर्त्ति नहि करथि पूर्वजक करथि कीर्त्तिकैं नष्ट ॥
निज रमणीसँ विमुख रहथि नित परकीया-संसक्त ।
से अयोग्य नृप सहथि दुःख वहु भए ऋण-रोग-ग्रस्त ॥१८॥

५. सुप्रजा

प्रजा प्रशंसा योग्य वैह जे, करथि न राज-विरोध ।
राजा रुष्टो होथि कदाचित्, प्रजा करथि नहि क्रोध ॥
पिता समान जानि राजाकैं पालथि हुनक निदेश ।
देथि समयपर कर बिन मँगनहुँ कए कचहरी प्रवेश ॥१९॥

निश्चित कर देवएमे कहियो करथि न व्यर्थ विवाद ।
राज-विरुद्ध न चलथि जाहिसँ हो धन-जन बरबाद ॥
हितचिंतक राजक भेलासँ ह्वैछ नित्य कल्याण ।
गहथि सुपथ नृप द्रोहरहित जे हुनक सदा हो त्राण ॥२०॥

चुगली ककरो करथि न कहियो राज-सभामे जाए ।
उत्पथगामीकैं शिक्षा दए लेथि सुपन्थ चढ़ाए ।।
सबसँ हिलि-मिलि रहथि न मनमे करथि वृथा अभिमान ।
से सुखसँ रहि निज समाजमे पावथि नित सम्मान ।।२१।।

सात्विक प्रजा शान्ति नित चाहथि रहथि कलहसँ कात ।
आनक किछु अभिघात करथि नहि, सहथि अपन वरु घात ।।
राज-विरोधी दुष्ट व्यक्तिसँ राखथि नहि सम्पर्क ।
कुटिल जनक छल-बल-प्रपंचसँ अनुपल रहथि सतर्क ।।२२।।

जाहि कार्य्यसँ राजक उन्नति तथा अपन हो वृद्धि ।
आनक हानि न हो विचारि से करथि मनोरथ-सिद्धि ।।
ककरो नहि किछु कहि उसकाबथि कौखन राज विरुद्ध ।
प्रजाधर्म जानथि गृहकृतिमे संतत रहथि प्रबुद्ध ।।२३।।

६. दुष्प्रजा

जे राजक विरुद्ध गोष्ठी कए रचथि गुप्त षड्यन्त्र ।
नृपक अनिष्ट हेतु निष्कारण सोचथि कठिन कुमन्त्र ।।
हानि-लाभ दिस ध्यान देथि नहि, करथि परक अपकार ।
अधम प्रजा से निज कुचालिसँ भोगथि दुःख अपार ।।२४।।

आनक वस्तु नीक जँ देखथि लेबक करथि उपाय ।
खेतक आड़ि तोड़ि अपनामे आनक लेथि मिलाय ।।
ककरो उचित कथा नहि मानथि, सभसँ करथि विरोध ।
सुखी रहथि नहि एहन दुराशय, प्रजा दुष्ट दुर्बोध ।।२५।।

७. सज्जन

सज्जन वैह थिकथि जे आनक करथि सदा उपकार ।
नीच जनक संसर्गहुमे पड़ि तजथि न उच्च विचार ।।
पर-जनसँ अपकृति भेलोपर बिसरि जाथि अपकार ।
क्रिया करथि नित उत्तम, पालथि देश धर्म आचार ।।२६।।

बाजथि वचन मधुर प्रिय कोमल, करथि न सत्यक त्याग ।
बल-विद्या धन-जनक न मनमे राखथि गर्वक भाग ।।
शरणापन्न होथि जँ दुर्जन करथि न हुनको त्याग ।
देशोन्नति चाहथि नित राखथि हरिजन पद अनुराग ।।२७।।

आनक निन्दा करथि न कहिओ नहि चाहथि निज मान ।
बाजथि नहि कटु वचन सहथि बरु आनक वज्र समान ।।
दोष छपावथि परक, न अपने करथि भ्रमादपि दोष ।
गहथि न पापक पन्थ लोभवश, राखि हृदय सन्तोष ।।२८।।

करथि शून्य हृदयहुकैं गुणमय निज गुण-जाल पसारि ।
मकड़ा जकाँ छिद्रकैं मूनथि जे परहित निर्धारि ।।
रहथि मौनपूर्वक, उद्घाटन करथि न आनक दोष ।
सदय हृदय संतत प्रसन्नमुख नहि ककरहु पर रोष ।।२९।।

लखि आनक उत्ताप द्रवित हो जनिक हृदय-नवनीत ।
यशक अपेक्षा करथि, अयशसँ भेल रहथि भयभीत ।।
यथासाध्य दीनक दुरवस्था मेटथि भय निरपेक्ष ।
अभिजन परिजन वन्धु-वर्गपर रहथि सदा सापेक्ष ।।३०।।

८. दुर्जन

दुष्ट जनक लक्षण थिक ककरो करथि न किछु उपकार ।
जे हुनकर हित चाहथि तनिको करथि व्यर्थ अपकार ।।
सुनि आनक अभ्युदय, तापसँ जरथि सदा बिन आगि ।
देखि सकथि सम्पति नहि आनक, रहथि हृदय सुख त्यागि ।।३१।।

नहि सुदृष्टिसँ ताकथि ककरहु बाजथि वचन कठोर ।
फूलल रहथि गर्वसँ सदिखन मद अमन्द, धन थोर ।।
दुखिया दुःख सुनाबए हुनका तकरा पर तमसाथि ।
छी मनहूस एतयसँ घसकू, ई कहि झट उठि जाथि ।।३२।।

आनक निन्दा करथि, सुनथि नित रहथि दुष्ट जन संग ।
गुरु-जनहुक उपहास वृथा कए उमगावथि निज अंग ।।
परक अमङ्गल हेतु शनि-ग्रह, बनल फिरथि सभठाम ।
पड़ल कुदृष्टि हुनक जनिकापर तनिकाँ नहि आराम ।।३३।।

यदि किछु अपन हानि कैने हो आनक अधिक अनिष्ट ।
नहि चूकथि कए बैसथि, पुलकित होथि साधि निज इष्ट ।।
पर अपवाद, दोष, दुर्गुण सुनि पाबथि हर्ष अपार ।
सुनि आनक यश, मलिन वदन भए दुखहिं नवावथि घार ।।३४।।

साँपहुँसँ वढ़ि बिषी दुष्ट थिक वचन सत्य ई मानू ।
सर्पक डसने एक कदाचित् मृत ह्वै अछि ई जानू ।।
किन्तु डसए जँ खल श्रुति एकक सभहिक खींचै प्राण ।
मन्त्र-तन्त्र उपचार अनेको कैनहु नहि हो त्राण ।।३५।।

६. पण्डित

ब्रह्मचर्य्य पालन कए, बिद्या पढ़ि जे बूझथि तत्त्व ।
असत् कर्म नहि करथि धर्मरत रहथि लसित गुण सत्त्व ।।
सबकें सम सुदृष्टिसँ देखथि, राखथि नियम अखण्डित ।
विनय-ज्ञान-युत हृदय जनिक हो, से यथार्थ छथि पण्डित ।।३६।।

चाहथि नित कल्याण सभक, जे मधुर मृदुल प्रियभाषी ।
व्यर्थ न बाजथि क्रोध करथि नहि सदा शान्ति-अभिलाषी ।।
अपन हानि भेनहु आनक हित करबामे नहि चूकथि ।
मनोनीत फल-प्राप्ति-लोभसँ नहि अधर्म दिस झूकथि ।।३७।।

सन्तोषामृत तृप्त सतत रहि जे पालथि कुल-धर्म ।
पड़ि परधर्मी जनक संगमे नहि त्यागथि निजकर्म ।।
हिंसाभाव रहित हो मानस, जनिक क्षमा संयुक्त ।
बुद्धिमान पण्डित समदर्शी, छथि से जीवन्मुक्त ।।३८।।

देथि धर्म उपदेश सबहिकाँ रहि अपने सुविनीत ।
पञ्चयज्ञ हरिपद-पूजनमे हो पुनि समय व्यतीत ।।
यथाशक्ति जन दीन दुखीकेँ, देथि नित्य किछु दान ।
शास्त्र-कुशल से पुरुष-रत्न छथि, पण्डित मान्य महान ।।३९।।

ज्ञान अग्निसँ जनिक भेल अछि भस्म सकल कृत-धर्म ।
सुख-दुखमे समभाव राखि जे पालथि निज शुभ कर्म ।।
नहि क्यो मित्र न शत्रु जनिक हो हृदय सत्त्व-गुणयुक्त ।
मन इन्द्रियगण वशमे जनिकाँ से पण्डित उपयुक्त ।।४०।।

१०. मूर्ख

माता-पिता गुरुक आज्ञा पर देथि न कहियो ध्यान ।
शास्त्र विषय नहि जानथि, जनिकाँ नहि कर्त्तव्यक ज्ञान ।।
निद्रा भोजनमे विशेष रुचि, भाषण वज्र समान ।
पुरुष हिताहित-ज्ञान शून्य अभिमानी मूर्ख महान ।।४१।।

बिन पढ़नहु षटशास्त्रवादमे दखल देथि दुर्बोध ।
लाख बुझौनहु नहि किछु बूझथि बुधसँ करथि विरोध ।।
नहि सम्मान करथि गुरुजनहुक रहथि विषय-सुख-लीन ।
निष्कारण झगड़थि हटनहु नहि मानथि बुद्धि-विहीन ।।४२।।

तजि आवश्यक काज घरक जे रहथि व्यसन-आसक्त ।
असत्-कर्मरत भेल फिरथि, जे नीच जनक बनि भक्त ।।
करथि यशस्कर काज न एको सहथि विविध निज हानि ।
कैनहुं अनुचित कर्म मूर्खकें नहि मनमे किछु ग्लानि ।।४३।।

बन्धु-वर्गसँ लड़थि निरर्थक करथि न निज हठ त्याग ।
अपन-अंश अणुमात्र तजथि नहि हड़पथि आनक भाग ।।
लोभग्रस्त, अनय नहि बूझथि, अविनत बुद्धिक मोट ।
कुल कलंक से थिकथि महाधम मूर्ख स्वभावक खोट ।।४४।।

की वजने हो अयश सभामे, तकर न मनमे ज्ञान ।
निष्कारण हँसि बाजथि, घूमथि मत्तगजेन्द्र समान ।।
मिथ्या-भाषणमे प्रवीण अति करथि न ऋत सम्मान ।
पाप निरत नित धर्म-कथापर देथि न कहियो ध्यान ।।४५।।

११. साधु

साधु सहथि सब कष्ट धैर्यंयुत शुचि सद्गुण-सम्पन्न ।
दुख-सुखकैं सम बूझि अनुक्षण राखथि हृदय प्रसन्न ।।
ज्ञान-दृष्टिसँ देखथि, नश्वर मायामय संसार ।
अछि आत्मासँ भिन्न देह ई क्षणभंगुर निःसार ।।४६।।

अस्थि-मांसमय मलिन शरीरक करथि न मनमे गर्व ।
धन जन पुत्र कलत्रहुमे नहि राखथि मोह अखर्व ।।
अचल भक्ति ईश्वरमे हुनकर धरथि हृदयमे ध्यान ।
ईश-कृपासँ भव-बंधनकैं तोड़थि लहि शुभज्ञान ।।४७।।

काम-क्रोध मद मोह लोभकैं करथि हृदयसँ दूर ।
दया क्षमा संतोष शौचसँ हृदय जनिक भरपूर ।।
समदर्शी भए विचरथि जगमे, करथि सभक उपकार ।
स्वार्थभाव राखथि नहि मनमे घूमथि रहित विकार ।।४८।।

दीन अनाथ जनक सेवामे, करथि समर्पित देह ।
आनक दुःख निवारण कारण, त्यागथि धन जन गेह ।।
शत्रु-मित्रगण विजय-पराजय मान-अमान समान ।
सुदृढ़ ज्ञानसँ बूझथि विचलित होथि न साधु महान ।।४९।।

कुवचन दुर्व्यवहार आदिसँ ककरो दुःख न देथि ।
धर्म जनित यश स्वतः प्राप्त हो, नहि अपयश जग लेथि ।।
गीता भणित कर्मयोगक दए श्रेयस्कर उपदेश ।
रहथि तमोगुण गहन अबोधक ज्ञानी साधु दिनेश ।।५०।।

१२. असाधु

अङ्ग विभूति जटा सिर शोभित पहिरथि नित कौपीन ।
नख न कटावथि, तिलक लगावथि, रहथि स्वार्थमे लीन ।।
अलख जगावथि, वेणु बजावथि, घूमथि द्वारहि द्वार ।
मनमे कंचन-कामिनि, गरमे तुलसी माला भार ।।५१।।

साधुक भेस रचथि ऊपरसँ, भीतर भरल विकार ।
जनिक हृदय मद-मोह-लोभ-छल-बलक बनल भण्डार ।।
नहि वाजथि नहि ताकथि ककरो दिस लोचन कए बन्द ।
कपट-रूप धारण कए वंचक विहरथि विषयानन्द ।।५२।।

तुम्बा दहिन हाथमे झोड़ा बाम कान्ह पर लेथि ।
आसन चिहुटा आदि वस्तुकैं स्थान काँखतर देथि ।।
चलथि याचना हेतु गृहस्थक घर बनि सिद्ध फकीर ।
देथि विभूति कहथि मन-वांछित सफल हैत धरु धीर ।।५३।।

जे किछु ठगि-ठगि कए धन लावथि करथि कुपथमे खर्च ।
भोजन अतिथि जनहुकैं नहि किछु, की करु आनक चर्च ।।
राग-रङ्गमे मग्न रहथि नित, पीबथि गाँजा-भाङ ।
नहि संलग्न हृदय हरिपदमे तोड़थि भक्तिक टाङ ।।५४।।

थिकहुँ "विरागी" भाखि पुजावथि सुजन मंडली बीच ।
विषय-वासना वशीभूत भए, काज करथि अति नीच ।।
चरित न शुद्ध हृदय अतिदूषित व्यर्थ कहाबथि सन्त ।
बाजथि किछु व्यवहार करथि किछु लागए हुनक न अन्त ।।५५।।

१३. सद्‌गुरु

सत्पथगामी सुपथप्रदर्शक देथि नीक उपदेश ।
शिष्यक हरथि न छल-बलसँ धन, करथि उचित आदेश ।।
वृथा भार नहि देथि शिष्यकैं तनिकाँ जानि अधीन ।
अकल्याण चाहथि नहि शिष्यक, से गुरु थिका महान ।।५६।।

शिक्षा देथि सदाचारक नित, हरथि मनक अज्ञान ।
करथि वृथा आलाप न हुनका बूझथि पुत्र समान ।।
शिष्य होथि सुचरित्र धर्म-रत करथि तदर्थ प्रयास ।
त्याग सुखद सन्तोष वृत्तिकैं बनथि न लोभक दास ।।५७।।

भ्रमवश हो यदि शिष्यवर्गसँ, कहियो कोनो दोष ।
क्षमा करथि अपराध हुनक गुरु, नहि दरसावथि रोष ।।
दयाभाव राखथि हुनकापर, निज आश्रित जन जानि ।
संकट किछु पड़नहु अपना पर, तजथि न धर्मक बानि ।।५८।।

निर्धन धनी शिष्य हो, सब पर राखथि भाव समान ।
सभक सदा शुभ चाहथि, सब दिन सद्‌गुरु शीलनिधान ।।
मनसा वचसा तथा कर्मणा करथि सुधारक यत्न ।
स्वयं सदाचारी सुविचारक, से गुरुमानव-रत्न ।।५९।।

शिष्यक करए जिज्ञासा धर्मक, मानथि मनमे हर्ष ।
बुझा देथि तत्काल मुदित भए, धर्म-कर्म-निष्कर्ष ।।
शिष्या हो वा शिष्य सभक से कुशल मनावथि नित्य ।
निष्ठायुत आचार हुनक नित, देखि होथि कृत-कृत्य ।।६०।।

१४. असद्‌गुरु

शिष्यक भल अनभलसँ मनमे राखथि नहि सम्बन्ध ।
स्वार्थ-सिद्धि हो जाहि युक्तिसँ तकरे करथि प्रबन्ध ॥
मनोभीष्ट सिद्धिक लोभन दए नित भ्रमजाल पसारथि ।
धर्मक जिज्ञासा कएलापर, किछु कहि पिण्ड छोड़ावथि ॥६१॥

ज्ञानहीन गुरु विषय-भोगमे, लिप्त रहथि दिन-राति ।
युक्त-अयुक्त विचारथि नहि किछु रहथि मोह मद माँति ॥
धनक लोभसँ जकरहि चाहथि देथि फूकि झट कान ।
चेला मुड़वामे नहि चूकथि लेथि दक्षिणा दान ॥६२॥

तिलक छाप माला बाहरमे, भीतर भरल विकार ।
ध्येय एक धनमात्र हृदयमे करथि तकर उपचार ॥
करथि न परमार्थक साधन किछु स्वार्थहिमे अनुरक्त ।
संसारी सुखभोग रागमे, रहथि सदा आसक्त ॥६३॥

उच्चासन पर बैसि पुजाबथि शिष्यवर्गसँ नित्य ।
शिष्य करथि जँ तन-धन अर्पण होथि गुरू कृतकृत्य ॥
आशीर्वाद देथि पुलकित भए हएत कामना सिद्ध ।
गुरु-पूजासँ ह्वैछ आयुबल विद्या-विभव समृद्ध ॥६४॥

अनुचित-उचित विचार त्यागि, झट करथि शिष्य पर क्रोध ।
निज दोषक स्वप्नहुमे कहियो, करथि न किछु परिशोध ॥
जे अविहित आदेश हुनक, नहि, पालथि शिष्य सुबोध ।
तकरापर से बिगड़ि मनहि-मन राखथि वृथा विरोध ॥६५॥

१५. सुशिष्य 78A

नीक शिष्य फँसि व्यसन जालमे करथि समय नहि नष्ट ।
पाठ पढ़थि एकाग्रचित्त भए, सहथि श्रमोचित कष्ट ।।
गुरु शिक्षा अनुसार चलथि, निज सकल सुमंगल मानि ।
गुरु शुश्रूषा करथि उचित नित, भावी शुभ-फल जानि ।।६६।।

नहि छल करथि न बांजथि कहियो मिथ्या गुरुक समीप ।
शुभ आदेश गुरुक नित पालथि शिष्य सुमति कुलदीप ।।
गुरु जँ क्रोध करथि कारणवश, शिष्य न मानथि रोष ।
क्षमा माँगि सुविनीत भावसँ करथि गुरुक परितोष ।।६७।।

ब्रह्मचर्य्य-व्रत पालन-पूर्वक करथि नित्य व्यायाम ।
आत्मिक, दैहिक शक्ति बढ़ा कए वनथि वली सुखधाम ।।
शुद्ध हृदय लघुपाकी भोजन करथि समय पर नित्य ।
अधिक शयन अत्यशन त्यागि से होथि सदा कृतकृत्य ।।६८।।

नहि स्वतन्त्र भए विचरथि कौखन, टारि गुरुक आदेश ।
देखथि नहि अश्लील सिनेमा, नाटक नटी प्रवेश ।।
पढ़ब छाड़ि सहपाठी जनसँ, करथि न वृथा विवाद ।
नहि विलासितावश उन्मद भए त्यागथि कुल-मर्याद ।।६९।।

करथि उपेक्षा नहि निज पाठक, खेल-कूदमे भूलि ।
नहि गुरुजनकैं नीच दृष्टिसँ, देखथि मदमे फूलि ।।
उचितक त्याग करथि नहि कहियो, नहि अनुचित लग जाथि ।
अपन वचनकैं सत्य बुझावक हेतु शपथ नहि खाथि ।।७०।।

१६. कुशिष्य

गुरुक उचित आज्ञा नहि मानथि, भेल फिरथि स्वच्छन्द ।
राखथि निज बुद्धिक बड़ दाबी, यद्यपि अति मतिमन्द ।।
सदुपदेश पर ध्यान देथि नहि विचरथि नीचक संग ।
पाठ्य विषय कण्ठस्थ करथि नहि सतत सिंगारथि अंग ।।७१।।

तीक्ष्णबुद्धि सहपाठी गणसँ राखथि व्यर्थक द्वेष ।
चरितहीन दुर्व्यसन छात्रसँ जोड़थि भाव विशेष ।
लम्पट संग रातिमे घूमथि गली बीच स्वच्छन्द ।
शिक्षकसँ दण्डित भेलो पर करथि कुचालि न बन्द ।।७२।।

मनोयोग सँ पढ़थि न कौखन, करथि गप्प सानन्द ।
छुट्टी लेबक हेतु निरर्थक रचथि अनेको फन्द ।।
पुस्तक, मसिहानी लेखनिकैं यत्र-तत्र धए देथि ।
यदि न समय पर भेटल निज तँ झट आनक लए लेथि ।।७३।।

वृथा खेलमे समय बितावथि पढ़ब छाड़ि दुर्बोध ।
मन भावय से करथि नित्य, नहि मानथि गुरुक निरोध ।
देखथि असत् सिनेमा, नाटक नाच सहित अनुराग ।
असर तकर भेलापर मनमे, करथि स्वधर्मक-त्याग ।।७४।।

विद्या विनय विवेक नष्ट कए, पथ-भ्रष्ट भए जाथि ।
विषय-भोगमे खर्च अधिक कए कर्ज काढ़िकए खाथि ।।
किछु दिनमे सम्पत्ति-हीन भए देथि भाग्यकैं दोष ।
एहन कुशिष्य कुमति नहि पावथि, कहियो सुख संतोष ।।७५।।

१७. सेव्य स्वामी

थिकथि सेव्य स्वामी जे बूझथि सेवक कैं निज अंग ।
वेतन देथि समय पर सबकाँ करथि नियम नहि भंग ।।
दासक दीन दशा पर राखथि, दया-दृष्टि सब काल ।
यथावसर साहाय्य दान दए, हरथि हुनक दुख-जाल ।।७६।।

गुण-अवगुण की अछि सेवकमे तकरे करथि विचार ।
गुण पर निज परितोष जनाबथि करथि दोष-परिहार ।।
समुचित काज लेथि सेवकसँ, नित्य नियम अनुसार ।
निज प्रभुत्व मदवश सुभृत्य प्रति, करथि न कुव्यवहार ।।७७।।

दया क्षमा गुणसँ भूषित जे नीति निपुण श्रीमान ।
से गुणज्ञ स्वामी सुसेव्य छथि, प्रियभाषी मतिमान ।।
पालक प्रभु नित गुप्त-रीतिसँ जाँचथि भृत्यक कृत्य ।
करथि काज संतोषजनक, से होथि पुरस्कृत भृत्य ।।७८।।

यदि भ्रमवश हो दोष, दास पर करथि न अतिशय क्रोध ।
बुझा देथि, अपराध क्षमा कए जानि ताहि तनुबोध ।।
बात-बातमे भृत्यवर्गपर वृथा करथि नहि कोप ।
व्यर्थ दोष नहि देथि भृत्यकैं, दए निज दोष विलोप ।।७९।।

शान्त भावसँ समय वितावथि, राखथि मनकैं शुद्ध ।
निज कर्त्तव्यपरायण जनपर होथि न कहियो क्रुद्ध ।।
सुनि खुशामदी बात देथि हँसि करथि कथा नहि कान ।
से स्वामी छथि सेव्य सर्वदा नीतिनिपुण मतिमान ।।८०।।

१८. अयोग्य स्वामी

जे प्रभु निर्दय निठुर दम्भवश शासन करथि अयुक्त ।
अनुचित काज लेथि सेवकसँ, तामसभाव प्रयुक्त ।।
अनियम काज कराबथि अनुदिन, सतत देखावथि त्रास ।
थिकथि न सेव्य हुनक सेवामे सुख पावथि नहि दास ।।८१।।

जनिक तमोगुणसँ दूषित हो हृदय अकारण रोष ।
निज त्रुटि भृत्यक माथ चढ़ाबथि, बूझथि नहि निज दोष ।।
मद्य पान कए अटपट बाजथि, मनमे गर्व अमन्द ।
कार्य-अकार्यक बोधरहित भए, चलथि सदा स्वच्छन्द ।।८२।।

दय उपदेश मधुर गुरुजनसँ नीकक करथि प्रयास ।
नहि मानथि उनटे विवादकए, करथि हुनक उपहास ।।
जे संगी हो हुनक स्वार्थरत, तकरे हित कए जानथि ।
अभिजन परिजन बंधुवर्गसँ बढ़ि तकरहि निज मानथि ।।८३।।

के की कतए करै अछि नोकर तकर न जानथि कृत्य ।
संचित द्रव्य खर्च कए ऋण लए करथि अपव्यय नित्य ।।
जे लंपट परदार-निरत जन तकर अधिक सम्मान ।
जे शुभचिंतक हुनक सुजन से सहथि नित्य अपमान ।।८४।।

के अछि हित के अहित न चीन्हथि बूझथि लाभ न हानि ।
निज निश्छल परिवार-वर्गसँ, रहथि शत्रुता ठानि ।।
कोनो निश्चित नियम न, समयक करथि न सत् उपयोग ।
एहन अयोग्यक सेवा सत्ये थिक नरकक उपभोग ।।८५।।

१९. सुसेवक

निश्छल सेवाधर्म निवाहब, थिक अद्‌भुत व्यापार ।
असम्भाव्य तेहने अछि, जाएब हेलि समुद्रक पार ।।
सेवावृत्ति कठिन यद्यपि ई, थिक तरुआरिक धार ।
सात्विक सेवक चलथि निडर भए गहि सत्यक आधार ।।८६।।

प्रभुक परोक्षहुमे तत्पर भए अपन जकाँ सब काज ।
करथि चलथि नित नीति-पुरस्सर वशकए संग समाज ।।
प्रभुक लाभकैं लाभ, हानिकैं बूझथि जे निज हानि ।
रक्षणीय से भृत्य थिकथि निज अंग सदृश हित मानि ।।८७।।

निज कर्त्तव्यक पालन अनुदिन करथि त्याग आलस्य ।
नहि अनिष्ट हो प्रभुक ताहि पर राखथि ध्यान अवश्य ।।
चलथि सुपथ दुर्वृत्ति करथि नहि, गहथि हृदय संतोष ।
क्षमा हेतु प्रभुसौं कर जोड़थि हो भ्रमवश जँ दोष ।।८८।।

प्रभुक उचित आदेशक पालन, सर्वप्रथम कृति जानथि ।
प्राण समर्पण करब स्वामिहित भृत्य-धर्म निज मानथि ।।
मन-वच-कर्म प्रभुक सेवाकए सुखसँ समय बिताबथि ।
प्रभुक करथि नहि सुनथि शिकायत सदा हुनक गुण गाबथि ।।८९।।

हानि करथि स्वप्नहुमे नहि, निज प्रभुक अपन हित कारण ।
घूस लेथि नहि फूसि न बाजथि, कए लघुजीवन धारण ।।
चाहथि नित कल्याण हृदयसँ प्रभुक परम हितकारी ।
एहन सुसेवक भेटब दुर्लभ, नृप सेवा अधिकारी ।।९०।।

२०. कुसेवक

ज नोकर निज काज करथि नहि, नित उठि फेरी देथि ।
ठकुरसुहाती बात बाजिकए, प्रभुक मोहि मन लेथि ।।
सतत खुशामदमे रहि छलसँ करथि स्वार्थकैं पूर ।
एहन कुसेवकसँ स्वामीकैं रहब नीक थिक दूर ।।६१।।

मालिक लग किछु बात बनाकए, कहथि हुनक रुचि राखि ।
काज करथि सन्तोषप्रद नहि, वीर बनथि बहु भाखि ।।
मनमे आन वचन आने किछु क्रिया करथि पुनि आन ।
एहन कपट-भंडार भृत्यकैं, राखथि नृप अज्ञान ।।६२।।

जे प्रभु-भक्त, भृत्य शुभचिंतक, क्रिया-कुशल मतिमान ।
हुनको झूठ शिकायत कए-कए भरथि प्रभुक नित कान ।।
देखि सकथि सम्मान न आनक सन्तत सुजन विरोधी ।
शांत भावसँ रहथि न कौखन उग्र अकारण क्रोधी ।।६३।।

लघु अधिकार पाबि सज्जनकैं बिन अपराध सताबथि ।
निज उपकारी बन्धुजनहुँसँ नाहक वैर बढ़ाबथि ।।
सुनि आनक यश होथि मलिनमुख निन्दा सुनि सुख पाबथि ।
आनक दोष करथि उद्घाटन निज कृत दोष छिपाबथि ।।६४।।

सुनि दुर्वृत्ति कहत की जनता तकरो नहि परवाह ।
आगाँ-पाछाँ नहि किछु सोचथि, करथि काज अधलाह ।।
फँसल देखि संकटमे प्रभुकैं अपन बचाबथि प्राण ।
एहन कुसेवककैं रखने हो, नहि कदापि कल्याण ।।६५।।

२१. योग्य पति

थिकथि योग्य पति, जे पत्नीसँ राखथि प्रेम अभङ्ग ।
सुख-दुःख समभाव देखावथि, बूझथि आधा अङ्ग ।।
यदि अवगुण किछु हो पत्नीमे करथि तकर प्रतिकार ।
सानुराग दए शिक्षा, समुचित दिन-दिन करथि सुधार ।।९६।।

पर पत्नीकें देखि सुन्दरी, नहि मनमे ललचाथि ।
रूपहुँसँ सद्गुण विशेष थिक, जानि हृदय हरषाथि ।।
महिलोचित गुण-राशिक आगाँ, माननीय नहि रूप ।
नहि सौन्दर्य चिरस्थायी थिक अछि से क्षणिक अनूप ।।९७।।

बनि अशिष्ट नहि करथि कदाचित् निज दारा अपमान ।
हरथि हुनक मन, मधुर वचन कहि, करथि उचित सम्मान ।।
केवल विषय भोग सुख मूलक नहि पत्नीकें जानथि ।
धर्म-कर्म कर्त्तव्यहुमे निज संगिनि, तनिका मानथि ।।९८।।

दए समुचित अधिकार नारिकें सौंपि देथि गृह काज ।
शिक्षा एहन न देथि जाहिसँ, त्यागथि लोकक लाज ।।
पत्नीकें निज दुश्चरित्रसँ, करथि न कहियो रुष्ट ।
अपन शुद्ध आचरण राखि नित, करथि प्रियाकें तुष्ट ।।९९।।

करथि विवाद न बात-बातमे निज विवाहिता-संग ।
देथि बुझाय करी नहि कहियो पतिक अनुज्ञा भंग ।।
कहि कठोर कुवचन नहि नारिक कोमल हृदय दुखावथि ।
यथासाध्य भूषण दुकूल दए चित्त हुनक हुलसावथि ।।१००।।

२२. अयोग्य पति

छथि अयोग्य पति, जे पत्नीकैं नहि सुदृष्टिसँ ताकथि ।
निष्कारण डाँटथि रमणीकैं परुष कथा बहु भाषथि ।।
नहि कहियो अनुराग भाव निज वनिताकैं दरसाबथि ।
पर-पत्नीसँ नेह जोड़ि निज पत्नीकैं तरसाबथि ।।१०१।।

मुह पिशाचसन कैने सदिखन धरथि भयानक भेस ।
गारि पढ़थि पत्नीकैं जनिका नहि किछु धर्मक लेस ।।
बिन दोषहु दोषारोपण कए देथि निरर्थक दंड ।
करथि प्रहार हटथि नहि डटनहु क्रोधी परम प्रचंड ।।१०२।।

बन्द करथि ताला दय घरमे, खाद्य वस्तु सभ राखि ।
छुबै देथि नहि पत्नीकैं किछु, दुष्ट वचन बहु भाखि ।।
माय-बापहुक जेठ-सहजहुक करथि न लाज लिहाज ।
राड़िनिसँ हँसि-हँसिकए बाजथि करथि न कोनो काज ।।१०३।।

चोर जकाँ चुपचाप रातिमे, नारि-शयन-गृह जाथि ।
अनुनय-विनय करथि कर जोड़थि बार-बार पछताथि ।।
करब न अनुचित काज आब हम, शपथ अनेको खाथि ।
पत्नीसँ सत्कृत भेला पर झट घरसँ बहराथि ।।१०४।।

बाहर आबि करथि सब पूर्वक कृति किछु कालक बाद ।
गृहिणी कानथि माथ हाथ दय सहि नहि सकथि विषाद ।।
कखन दशा की हैत चित्तमे हुनक, सतत हो त्रास ।
एहन अयोग्य पतिक पत्नीकैं जिवितहिं नरकक बास ।।१०५।।

२३. योग्य पत्नी

जे छथि सती नारि से पतिकैं पूजथि ईश्वर जानि ।
मन-वच-कर्म करथि पति-सेवा परम धर्म मन मानि ।।
बिन विचार कैनहि, झट पालथि पतिक सकल आदेश ।
पतिकैं दुखी करथि नहि से, बरु अपने सहथि कलेश ।।१०६।।

पतिकैं सुखी देखि सुख पाबथि, खिन्न देखि अति खेद ।
पतिक हृदयसँ अपन हृदयमे राखथि नहि किछु भेद ।।
करथि न कहियो पतिक अनादर केहनो अवसर पाबि ।
सुनि पतिसँ निज दोष, दाँतसँ रहथि जीहकैं दाबि ।।१०७।।

उषा कालमे जागि करथि नित अपन सकल शुचि कर्म ।
तखन सहित उत्साह सँभारथि आवश्यक गृह-धर्म ।।
सासु-ससुर गुरुजनक यथोचित पालथि नित्य निदेश ।
करथि पतिक परिचर्या तत्क्षण कए पति-भवन-प्रवेश ।।१०८।।

आन पुरुषसँ करथि न कहियो रसवश प्रेमालाप ।
बूझथि प्रोषितपतिकाकैं थिक अङ्ग सिङारब पाप ।।
शिशु-रक्षाक भार अनका दए नहि ककरो घर जाथि ।
बिना प्रयोजन बिन संगी नहि आङनसँ बहराथि ।।१०९।।

राखथि सद्व्यवहार सभहिसँ शील भरल दृगकोर ।
ककरो हृदय दुखाबथि नहि कहि अप्रिय वचन कठोर ।।
सती नारि निज सत्य-धर्मपर सदा रहथि आरूढ़ ।
जीवन-धन मानथि निज पतिकैं होथि तरुण वा बूढ़ ।।११०।।

२४. अयोग्य पत्नी

असती नारि सतीसँ राखथि सतत अकारण द्वेष ।
अति विचित्र असतीक चरित अछि बरनि सकथि नहि शेष ।।
पतिक बात एको नहि मानथि घर-घर घूमथि नित्य ।
नैहरमे रहि समय बिताबथि, की कहब हुनक कु-कृत्य ।।१११।।

घरक काज किछु करथि न कौखन सतत सिङारथि अंग ।
टोलक लोक दुखी रह संतत देखि हुनक ई ढंग ।।
माय-बाप, गुरु-जनक वचन पर देथि न कनिको ध्यान ।
कोनो काजक ब्याज वृथा कए घरसँ करथि प्रयाण ।।११२।।

दुश्चरित्र सखि सदन पहुँचि से सीखथि नव रस-रंग ।
निष्कारण हँसि बाजथि, खेलथि तास युवकजन संग ।।
घड़ी राति बितलापर पहुँचथि निज घर तजि भय-लाज ।
जा चुपचाप सेज पर सूतथि, कए सिर दर्दक ब्याज ।।११३।।

जाथि कदाचित् सासुर तँ, नित ओतय खेलाबथि भूत ।
ननदिक कोन कथा, जनिकासँ स्वयं डरथि यमदूत ।।
सासुक कहल कथा नहि मानथि, चलथि स्वरुचि अनुसार ।
पतिक अनादर करथि कामिनी ठानि असत् व्यवहार ।।११४।।

करथि पाक वहलैल तकर हम करू प्रशंसा कोन ।
भात असिद्ध दालि जरले सन व्यंजनमे बहु नोन ।।
खैनिहार भोजन की करता कहुना गिड़ने जाथि ।
नहि लजाथि फूहरि ओ अपने परसि पेटभरि खाथि ।।११५।।

२५. योग्य पिता

योग्य पिता निज संतानहुँकें स्वयं बनावथि योग्य ।
अशन-वसन समयोचित हुनका दय राखथि आरोग्य ।।
ईश्वर नाम-स्मरण करावथि देथि धर्म उपदेश ।
हो न जाहिसँ हुनक हृदयमे नास्तिकताक प्रवेश ।।११६।।

देथि उचित शिक्षा संततिकैं, सावधान भए नित्य ।
राखथि दृष्टि, कुसंगतिमे पड़ि नहि करए कोनो कुकृत्य ।।
अपनहु चलथि नीति-पथ पर नित, करथि धर्म सम्मान ।
एहन कर्म नहि करथि, देखि जे बिगड़ि जाय संतान ।।११७।।

संतानक शिक्षा रक्षा पर हो न विभेद-ज्ञान ।
की कन्या की पुत्र दुहू पर, राखथि दृष्टि समान ।।
चाहथि संतति हुनक सदा हो धर्मनिष्ठ कर्मिष्ठ ।
राखथि निज आचारहु पर, से दृष्टि स्वयं धर्मिष्ठ ।।११८।।

प्राय: ई देखहुमे अवइछ, जनितहु अछि सब लोक ।
जनिक पिता यादृश व्यवसायी तादृश तनिकर तोक ।।
धर्मशील बापक संतानो करथि न कर्मक त्याग ।
ईश्वर-भक्तक संततिकैं हो, ईश्वरमे अनुराग ।।११९।।

जनिक पिता गुणवान हुनक हो, संतानो गुणवान ।
जनक जनिक मतिमान, हुनक हो बुद्धिमान संतान ।।
विद्या विनय विवेक बुद्धि वल बढ़ए बापहिक धर्म ।
पिता नीक तँ संततिहुक हो प्राय: उत्तम कर्म ।।१२०।।

२६. अयोग्य पिता

पिता अयोग्य रहथि तँ प्रायः हो अयोग्य संतान ।
बिना योग्यता हो नहि ककरो, युक्त अयुक्तक ज्ञान ।।
जौं हो पिता चरित्रहीन तौं संतति की हो नीक ।
बापक आत्मरूप आत्मज हो शास्त्र कथन ई थीक ।।१२१।।

व्यसन विनोदी पिता स्नेहवश, राखथि शिशुकेँ संग ।
देखथि बालक खेल मुदित भए सीखथि खेलक ढंग ।।
जे देखथि अधलाह नीक वा, तकरे पड़ए प्रभाव ।
नीकक संग नीक हो, नीचक संगति नीच स्वभाव ।।१२२।।

नहि अपने किछु बूझथि मानथि नहि आनक हित बात ।
शिक्षा देथि न निज संततिकेँ, करथि समय अभिघात ।।
नाच रंगमे संबसँ आगाँ, बैसथि लए शिशु संग ।
देखथि स्वयं देखाबथि अनकहु, मनमे राखि उमंग ।।१२३।।

बाल्य अवस्थामे नहि शिशुकैं, गुरु समीप लए जाथि ।
देखि अशिक्षित निज बालककैं पुनि पाछाँ पछताथि ।।
बाल्य अवस्थहिमे बच्चाकैं, देथि विवाह कराय ।
युवतिक वशीभूत भए बालक नहि घरसँ बहराय ।।१२४।।

पुत्र अविद्या युवा भेलो पर करथि न सत् व्यवसाय ।
माय-बापकैं दुःख देथि बहु, भेल फिरथि निरुपाय ।।
पिता अयोग्यक दोषें बालक विद्या-विनय-विहीन ।
भोगथि कष्ट नष्ट कए संपति, बनथि अंतमे दीन ।।१२५।।

२७. सुपुत्र

छथि सुपुत्र जे निज चरित्रसँ सभकैं करथि प्रसन्न ।
यथासाध्य दुख तकर दुराबथि, जे हो शरणापन्न ।।
माय-बाप, गुरुजनक चरणमे, राखथि भक्ति विशेष ।
सबसँ हिलिमिलि रहथि प्रेमवश नहि ककरहुसँ द्वेष ।।१२६।।

विविध शास्त्र पढ़ि धर्म धुरंधर, विनय विभूषित चित्त ।
निरभिमान सभठाम सुपूजित, करथि लाभ बहुवित्त ।।
जे स्वभावसँ पिशुन विनिन्दक, करथि हुनक उपहास ।
तकरहु पर से दया देखाबथि, कए बहु विनय विकास ।।१२७।।

अपने पढ़थि पढ़ाबथि अनकहु, देथि दीनकैं दान ।
पास हुनक पहुँचथि जौं सज्जन, करथि हुनक सम्मान ।।
पालथि अपन धर्म तत्पर भए, नहि अधर्म लग जाथि ।
कर्मयोग साधनमे सुचतुर, नहि कहियो अगुताथि ।।१२८।।

दूर रहथि नीचक संगतिसौं, राखथि उच्च विचार ।
करथि कुरीति निरोध स्वजातिक, हरथि अविद्या भार ।।
देशोन्नति चाहथि, समाजकैं देथि उचित उपदेश ।
विना बजौनहु धर्म सभामे, करथि सहर्ष प्रवेश ।।१२९।।

ब्रह्मचर्य व्रत धारणकए नित; पालथि देशाचार ।
करथि दरिद्रजनक समयोचित, यथासाध्य उपकार ।।
अभिजन परिजन बन्धुवर्गसौं, राखथि निश्छल भाव ।
ककरो कहथि कथा नहि उत्कट, कोमल सरल स्वभाव ।।१३०।।

२८. कुपुत्र

छथि कुपुत्र जनिकाँ हरिपदमे हो न कनेको भक्ति ।
की अधर्म की धर्म न बूझथि, व्यसन मध्य अनुरक्ति ।।
माय-बापहुक सदुपदेश पर देथि न कहियो ध्यान ।
झगड़थि बन्धुवर्गसौं अनुदिन करथि हुनक अपमान ।।१३१।।

व्यर्थ विवाद करथि संगीसौं चालि चलथि बेढंग ।
नीकक लग बैसथि नहि कौखन, घूमथि नीचक संग ।।
बिना जगौने जागथि नहि ओ, सूतथि साँझहि जाय ।
बिन दिन उठने उठथि न कहियो, पड़ल रहथि अलसाय ।।१३२।।

निष्कारण निज भाइ-बहिनसौं, नित उठि ठानथि रारि ।
अपन दोष मानथि नहि, अनके देथि दोष सिर डारि ।।
चलथि न शास्त्र कथित सत्पथ पर, भेल फिरथि उद्दण्ड ।
दुराचारकें पाप न बूझथि, हठी परम पाखण्ड ।।१३३।।

जननी जनकक कहल न मानथि, रहथि नशामे चूर ।
जूआ खेलक हेतु भवनसौं, निकसि जाथि बहु दूर ।।
हारथि क्षुब्ध भेल घर आबथि, देथि भृत्यकें गारि ।
बिन भोजन कैनहि शय्या पर लेटि रहथि हिय हारि ।।१३४।।

निज पत्नी गुण रूपवतीसौं, करथि न कहियो भेंट ।
प्रेम भावसौं किछु न प्रयोजन, हो भोजन भरिपेट ।।
घरक लोक सभ जनिक क्रियासौं, नहि पाबथि चित चैन ।
एहन कुपुत्र होथि बड़ पापे, स्वजन दुखी दिन-रैन ।।१३५।।

२९. सुमित्र

अपन दुःख भारी हो, तकरा बूझथि तृणक समान ।
मित्रक दुख लघु हो तँ तकरा जानथि कठिन महान ।।
सम्पति-विपति दुहूमे मित्रक, राखथि सम व्यवहार ।
मित्रक गुण गावथि, सुख पावथि, करथि दोष परिहार ।।१३६।।

देहहुसँ बढ़ि जानि मित्रकँ, मानथि प्राण समान ।
देथि-लेथि निःशङ्क न राखथि, मनमे भेद-ज्ञान ।।
गुप्त विषय भाषथि न छिपावथि, हृदय दुहूक अभिन्न ।
मित्रक सुखमे सुखी होथि, पुन रहथि, खेदमे खिन्न ।।१३७।।

ऋण-पैंचक व्यवहार न राखथि करथि न व्यर्थ विवाद ।
मित्रक शुभ अवसरमे उद्घट करथि न अपन विषाद ।।
परिहासहु स्वप्नमे कहियो, निज मित्रक अपमान ।
करथि न, अपन प्रभुत्व प्रकट कए, दरसावथि अभिमान ।।१३८।।

नहि परोक्षमे प्रेमी मित्रक, पत्नीसँ वतियाथि ।
विना वजौने वा बिन काजें, नहि मित्रक घर जाथि ।।
मित्रक अभिजन वन्धुवर्गकँ बूझथि मित्र समान ।
समय-समय पर भेट हुनक कए राखथि भाव महान ।।१३९।।

अपन माय-वापक सम, मित्रक जननि तातकँ मानथि ।
सेवा हुनक करव समयोचित धर्म अपन से जानथि ।।
मित्रक अन्य मित्र वर्गहुसौं राखथि मित्रक भाव ।
छथि सुमित्र से मान्य, जनिक हो उत्तम शील-स्वभाव ।।१४०।।

३०. कुमित्र

जे सम्मुख बाजथि प्रिय कोमल वचन, मर्म मन राखि ।
करथि अनिष्ट काज पाछाँमे, विघ्न वचन बहु भाखि ।।
विषधर गति सम जनिक चित्त हो, कुटिल कुबुद्धि निधान ।
से कुमित्र नहि छथि विश्वासक पात्र परम अज्ञान ।।१४१।।

लेबक बेरि कहथि धन मित्रक की न हमर से थीक ।
देबक बेरि कपर्द देथि नहि, बाजथि वचन अलीक ।।
मित्रक सम्पति देखि मनहि मन, कुढ़थि दुष्ट अविचार ।
उपकृत बहु भेलो पर कहियो, करथि न प्रत्युपकार ।।१४२।।

मित्रक अवनति हेतु अनेको करथि गुप्त षड्यन्त्र ।
बनि वञ्चक मित्रक विपक्षमे नित नव रचथि कुमन्त्र ।।
हित जनकैं दोषी कायम कए, बनथि स्वयं निर्दोष ।
'हम अपनेक हितैषी छी' कहि करथि मित्र-परितोष ।।१४३।।

करथि प्रतिज्ञा शपथ खाथि बहु कहब करब हम सैह ।
अवसर पर ओ करथि काज से, मित्र हानिकर जैह ।।
गुप्त विषय सब बूझि मित्रसौं, भरथि अमित्रक कान ।
मौखिक भाव भरल ऋजुतासौं मनक भाव किछु आन ।।१४४।।

एहन कुमित्रक करी न कहियो स्वप्नहुमे विश्वास ।
कतबो नित सौहार्द जनाबथि, करी हुनक नहि आस ।।
नहि प्रतीति-भाजन कृतघ्न जे दुष्ट अधम अपवित्र ।
से दूरहिसँ त्याग योग्य छथि कपटी कुटिल कुमित्र ।।१४५।।

३१. मितव्यय

मितव्ययी से थिकथि, खर्च जे करथि ग्राय ग्रनुसार ।
नहि ऋण लेथि कतहु ककरहुसौं, नहि पुन वस्तु उधार ।।
किछु-किछु संचय करथि द्रव्यहुक, कए भविष्य सुविचार ।
नहि वदान्य, नहि कृपण बनथि, से पालथि निज व्यवहार ।।१४६।।

जे गृहस्थ छथि विविध कुटुम्बी, व्यय पर करथि विचार ।
ग्रपन ग्राय पर ध्यान राखि नित, चलथि नियम ग्रनुसार ।।
तजि विलासिता वस्तु, उचित जे हो, ग्रावश्यक नित्य ।
भोजन, वसन, शयन सभ समुचित कए पालथि गृहकृत्य ।।१४७।।

के कहियो, सन्ताप सहथि नहि, रहथि सदा दतचित्त ।
नहि, देखथि दिन दुख-दारिद्र्यक कथमपि संचित वित्त ।।
नहि यश लेथि फजूल खर्चकए नहि कंजूस कहाबथि ।
धन लुटाय निर्धन. भए कहियो, नहि दुःसह दुख पाबथि ।।१४८।।

उचितक त्याग करी नहि कहियो, नहि ग्रनुचित लग जाइ ।
थोड़ बहुत लए काज करी सब, नहि पाछाँ पछिताइ ।।
जे किछु ग्राय ग्रपन हो, से लए करी नित्य निर्वाह ।
जीवन सुखमय हएत ग्रवश्ये मनमे शान्ति उछाह ।।१४९।।

कष्ट काटि, संचय नहि द्रव्यक, करथि त्यागि निज धर्म ।
थोड़ ग्रायमे थोड़बहि लए नित करथि उचित सभ कर्म ।।
ग्रनुचित खर्च करथि नहि कहियो साधथि सिद्धि समृद्धि ।
मितव्ययी से पुरुष रत्न छथि हुनक सदा हो वृद्धि ।।१५०।।

३२. अमितव्यय

आमद की अछि अपन ताहि पर देथि न कहियो ध्यान ।
नाटक, नाच-गान जलसामे, करथि नित्य बहु दान ।।
अमितव्यय गृहवासी जनकाँ थिक सम्पत्तिक मर्ज ।
जानि-बूझि नहि खर्च घटाबथि, झट लए आनथि कर्ज ।।१५१।।

थीक मितव्यय धर्म गृहस्थक, अमितव्यय थिक पाप ।
मितव्ययी सुख भोगथि, अमितव्ययी सहथि परिताप ।।
जतबा हो आमद ततबहिमे, करी सिद्ध सब काम ।
ततबे पैर पसारी जतबे अपन सेज हो नाम ।।१५२।।

अमितव्ययी पुरुषकें व्याकुल, करइछ परिमित चित्त ।
खर्चक ब्योंत ठीक नहि भेने, सोचथि नित चलचित्त ।।
जे यथेष्ट परिमाण रहित अछि साड़ी हाथें छोट ।
ह्वैछ ओछ तनिकाँ, जे युवती छथि किछु देहक मोट ।।१५३।।

अपना सौं विशेष धनवानक, लखि नित भोग-विलास ।
करथि हुनक अनुकरण कर्ज लए, मनक पुरावथि आस ।।
थोड़बहि दिनमे अल्पधनी से संकट सहथि अपार ।
धन-सम्पति की रहए हुनक जे ऋण लए बनथि उदार ।।१५४।।

खर्च फजूलहिसँ मिटि जाइछ, केहन केहन दरबार ।
देखि दशा दयनीय दरिद्रक, मनमे करी विचार ।।
निज अर्जित धनसौं, किछु संचय कर्ज त्यागि आलस्य ।
छठम अंश आयक नहि छूबू सुखसौं रहब अवश्य ।।१५५।।

३३. सुबुद्धि

सुख सम्पत्तिक हेतु सुमति अछि, तकर करी नित खोज ।
सकल सुमङ्गल बसए बुद्धिमे, धर्म विजय बल ओज ।।
बुद्धि रत्न भूषित मानव, से थिकथि विश्व आदर्श ।
सफल जन्म हो सुमति मनुष्यक, अन्त सुमति युत हर्ष ।।१५६।।

बिना बुद्धि विश्वक आवश्यक चलि न सकै अछि काज ।
बुद्धिमान मनुजक करमे रह, कुल मर्यादक लाज ।।
सुमति मान सभहिक हित चाहथि, हुनक हाथ गहि लोक ।
चलथि अन्हारहुमे निशंक भए आँखि मूनि बेरोक ।।१५७।।

मति अछि विमल जनिक, जग हुनका नहि किछु अछि अज्ञात ।
जानथि स्वर्ग मर्त्य पातालक, अनुभवसँ सभ बात ।।
भूत भविष्यत् वर्त्तमानहुक बूझथि सभ वृत्तान्त ।
आविष्कार करथि नव वस्तुक, पावथि सुयश नितान्त ।।१५८।।

बुद्धिमान नेता संसारक, करथि विविध उपकार ।
निश्छल भाव राखि सब जनसौं करथि शुद्ध व्यवहार ।।
रचि अनेक कौशल, संसारक हरथि दुःख समुदाय ।
निज देशक सब जीव सुखी हो करथि तकर सदुपाय ।।१५९।।

बुद्धिहीनकें सुमतिक शिक्षा, देव बुझथि निज धर्म ।
पड़ि केहनो संकटमे ज्ञानी त्यागथि नहि शुभ कर्म ।।
नहि राखथि सम्बन्ध स्वार्थसौं, साधथि नित परमार्थ ।
बुद्धिमान नरके जगमे अछि, दुर्लभ कोन पदार्थ ।।१६०।।

३४. कुबुद्धि

अछि कुबुद्धि सब दुःखक कारण, थिक असाध्य ई रोग ।
रोग-ग्रस्त मनुजकें दुर्लभ, अछि सात्त्विक सुख भोग ।।
काम-क्रोध-मद आदि उपद्रव, गदक थीक सहकारी ।
कुमति रोग सभकें सतबै अछि, दए अनेक दुख भारी ।।१६१।।

जे न कुमतिवश करए लोक, अछि कोन एहन अपकर्म ।
पढ़ि पाखण्डक पाठ, मन्दमति त्यागि देथि निज धर्म ।।
नहि बूझथि कर्त्तव्य अपन से, थिक ई कुमतिक दोष ।
बुद्धिहीन नर स्वयं दोष कए, करथि आन पर रोष ।।१६२।।

बुद्धि बिगड़ने मन बिगड़ै अछि, चञ्चल अबल अशक्त ।
ह्वैछ मनक दुःसङ्ग दोषसौं, इन्द्रिय विषयासक्त ।।
रागद्वेष विवशभए, इन्द्रिय करए अनर्थ अनेक ।
जीवहि पाप गर्तमे गोंतए, हरि सत्कर्म विवेक ।।१६३।।

कए न सकथि से अपन समुन्नति, जे नर छथि मति-हीन ।
दिन-दिन निजकृत दुरति दोषसौं भेल फिरथि अति दीन ।।
कए न सकथि उपकार अपन, से आनक की करताह ।
विकृत बुद्धि दूषित मनमे की, हरिक ध्यान धरताह ।।१६४।।

पूर्वजन्मकृत पापक फलसौं ह्वैछ मनुज मतिहीन ।
बिन सद्गुरुक कृपा भेने, से हो नहि पाप विलीन ।।
उत्तम कुलमे जन्म-ग्रहणकए पौनहु सुन्दर रूप ।
यदि कुबुद्धि तौं की सुख भोगब, भेलहुँ यद्यपि भूप ।।१६५।।

३५. अहंकार

अहंकार दैवी सम्पत्तिक, थिक वड़ भारी चोर ।
मित्र महा मोहक अछि, ज्ञानक सन्तत शत्रु कठोर ॥
अभिमानी प्राणीकाँ हो नहि, देह अनित्यक बोध ।
फूलल रहथि गर्वमे, पापक करथि न किछु परिशोध ॥१६६॥

अहंकार सरदार अधिक अछि करए अनीतिक वृद्धि ।
जकरा मनमे वास तकर नहि कहियो हो सुख सिद्धि ॥
गर्वी अपन बड़प्पन हाँकथि, बाजि वचन बहु फूसि ।
ओ जौं अपन गुणीकें देखथि देथि अवश्ये दूसि ॥१६७॥

जे मादकता मदमे अछि, से मदिरामे न रहैछ ।
मद्यक नशा उतरि जाइछ, अभिमानक नित्य बढ़ैछ ॥
झूमथि मद उन्मत्त रहथि नित, मदक नशामे चूर ।
हुनका की सूझय न्यायक पथ, रहए नीति अति दूर ॥१६८॥

अहम्मन्य अपनाकें मानथि, कर्त्ता निःसंकोच ।
गर्वजनित निज कृत अनीति पर, हो तनिका नहि सोच ॥
नहि सम्मान करथि गुरुजनहुक, मनमे अति अभिमान ।
बैसहु कहथि न आगत जनकैं, बनि अविनीत महान ॥१६९॥

नहि सुदृष्टिसौं ताकथि ककरो दिस ओ दम्भ निधान ।
शरणागतक विनय वाणी पर, देथि न दुर्मद ध्यान ॥
घार टेढ़ कए, लेथि जोरसौं श्वास घमंडी व्यक्ति ।
होथि मुदित, सुनि खुशामदीसौं अपन विशेष प्रशस्ति ॥१७०॥

३६. दया

दया मूल सब धर्मक थिक, ई जानि दया नहि त्यागी ।
से दयालु नर पूज्य थिकथि, जे दीन जनक अनुरागी ।।
देखि दशा दयनीय दरिद्रक सुनि दुखियाक पुकार ।
द्रवित हृदय हो हुनक शक्ति भरि, करथि तकर उपकार ।।१७१।।

दया-रत्नसँ भूषित जे नर, से अवश्य छथि धन्य ।
दु:ख निवारण बेरि न बूझथि, के निज के अछि अन्य ।।
क्यो केहनो हो प्राणी, सब पर राखथि भाव समान ।
यथासाध्य दुख हरथि सभक से, करथि न किछु अभिमान ।।१७२।।

दीनजनक दुख देखि, दुखी भए दयाशील नर-रत्न ।
कष्ट निवारण हेतु अनुक्षण करथि अनेको यत्न ।।
शरणागतक देखि दुख दारुण, करथि तकर प्रतिकार ।
अपने कष्ट सहथि, दुख आनक हरथि शक्ति अनुसार ।।१७३।।

दए सहायता करथि दरिद्रक, यथासाध्य उपकार ।
अपन दु:ख दिस ध्यान देथि नहि, करथि गरीब गुहार ।।
जे अनाथ अछि परम कष्टमे, तकर करथि से त्राण ।
मरणासन्न अन्न बिन जे हो तकर बचाबथि प्राण ।।१७४।।

निर्दय नर आओर पिशाचमे अछि न कनेको भेद ।
दुहू प्राणगाहक अछि आनक, दु:ख देखि नहि खेद ।।
दुखियहिकैं बढ़ि अधिक सताबै, निर्दय पुरुष पिशाच ।
'दयाहीन मानुष पिशाच थिक' लोक-उक्ति ई साँच ।।१७५।।

३७. क्षमा

क्षमा अलंकृत हृदय जनिक अछि, पुरुषरत्न से धन्य ।
ईश्वरीय गुण क्षमा धर्मसौं भूपित सम के अन्य ।।
क्षमाशील मानवकाँ हो नहि, क्यो अमित्र संसार ।
क्षमा नाव दृढ़ गहि होइत अछि, नर भवसागर पार ।।१७६।

जे आनक सहि लेथि दोषकेँ करथि न मनमे रोप ।
हो अनुचित अपनासौं जौं किछु, दोप न अनका देथि ।।
क्षमा अमूल्य रत्न मंडित जन, चाहथि नित सतसंग ।
तजथि न अपने शान्ति, न आनक करथि शान्ति सुखभंग ।।१७७।

क्षमा शस्त्रधारीकेँ, की कए सकथि दुष्ट दुर्दान्त ।
तृण विरहित धरतीमे खसने अग्नि स्वयं हो शान्त ।।
जतय प्रवाहित क्षमा नदी अछि, ततय विरोधक आगि ।।
की कदापि भए सकै प्रज्वलित जाए रसातल भागि ।।१७८।।

अछि भगवानक वास क्षमामे, सत्य वचन ई जानू ।
बिना कृपा भगवानक हो नहि, प्राप्त क्षमा-गुण मानू ।।
जे छथि ईश्वर-भक्त हृदयसौं, जानब नि:सन्देह ।
क्षमा आदि गुणसौं शोभित हो, हुनकर मानस गेह ।।१७९।।

जाहि मनुष्यक हृदय-कोषमे, क्षमा-रत्न अछि रक्षित ।
से कदापि नर भए सकइछ की सात्त्विक सुखसौं वंचित ।।
एक क्षमामे, विहित धर्मगुण अछि सम्मिलित अनेक ।
दया, सत्य, संतोष, धैर्य, बल, भक्ति, विराग, विवेक ।।१८०।।

३८. अक्रोध

थिक अक्रोध धर्म, सुखदायक; दुखदायक थिक क्रोध ।
जे धर्मक अभिलाषी जन छथि, करथि क्रोध परिशोध ।।
मनक विरुद्ध कार्य भेलासौं हो क्रोधक उत्पत्ति ।
तैं जौं मनकैं वशमे राखी (तौं) हैत न रिस आपत्ति ।।१८१।।

चिर संचित व्रत-फल क्षणमे क्रोध करै अछि दूर ।
अछि दुर्दम्य, बुद्धि विध्वंसक क्रोध प्रबल रिपु शूर ।।
व्यामोहक कारण प्रधान थिक, दुर्जय दोष निधान ।
झट अधर्म पथ पर लै जाइछ क्रोध, हरण कए ज्ञान ।।१८२।।

मित्रहुकैं अमित्र, शुचि मनकैं अशुचि, शीघ्र कए दै अछि ।
व्रत, जप, यज्ञ, नियमकैं दूषित कए सुधर्म हरि लै अछि ।।
बुद्धि लोपकए झट बनबै अछि, ज्ञानिहुकैं निर्बोध ।
स्वजनहुसौं विरोध करबै अछि, पापमूल ई क्रोध ।।१८३।।

केहनो होथु तपस्वी, पूजा-पाठ-निरत विज्ञानी ।
व्रत, जप, योग करथु निर्धारित नियम सहित नित दानी ।।
क्रोध-शत्रुकैं जौं नहि सम्यक, जीति स्ववश कए देलन्हि ।
तौं क्रोधी शुभ सकल कर्मकैं स्वयं विफल कए देलन्हि ।।१८४।।

से सुधीर, गंभीर, वीरवर थिकथि विशेष यशस्वी ।
माननीय मानवमणि मंगलमूर्त्ति महान मनस्वी ।।
क्रोध शत्रुकैं जीति, सुखी भए रहथि शान्त जे प्राणी ।
द्वेष-रहित मतिधन्य थिकथि, से अक्रोधी नर ज्ञानी ।।१८५।।

३७. सत्य

सत्यधर्म अछि सकल धर्मसँ श्रेष्ठ सत्य ई बात ।
सत्य रूप भगवान थिकाथि, ई वचन वेद विख्यात ॥
सत्य धर्म पर सकल तत्त्व अछि, अवलंबित ई जानू ।
सत्ये पर संसार अवस्थित, कथा सत्य ई मानू ॥१८६॥

एक सत्य-व्रत पालन कैने, अनायास सब धर्म ।
हो सम्प्राप्त, सत्यसौं जगमे होइछ सफल सब कर्म ॥
एक सत्य पर दृढ़ रहने नर, पावथि ब्रह्मानन्द ।
सत्यनिष्ठ जनकैं धर्मक फल, अछि सब सुगम अमन्द ॥१८७॥

सत्यलीन नर सत्यक बलसौं, परम उच्चपद पावथि ।
सत्यबलें भव-सिंधु तरथि नर, निज वंशहुकैं तारथि ॥
जे सत्यक अवलंबन कए नित रहथि अनृतसौं दूर ।
हुनक हृदय अध्यात्म-ज्ञानसौं रहए सदा भरपूर ॥१८८॥

यथा सत्य सब धर्मक साधक अछि, कल्याण निधान ।
तथा असत्य सकल पापक थिक, आश्रय नरक निदान ॥
सत्य कल्पतरु सेवनकए नर, पावथि मुक्तिक द्वार ।
जे असत्य सेवी, से बूड़थि पाप सिंधु मँझधार ॥१८९॥

सत्य सुधर्मक सेवनसौं हो सकल अर्थ संसिद्धि ।
सत्यशील सज्जनक सदा हो आयु सुयश बल वृद्धि ॥
जे असत्य पथगामी मानव देथि सत्यकैं त्यागि ।
से असंख्य दुख भोगथि, झुलसथि नित संतापक आगि ॥१९०॥

४०. शौच

शौच द्विविध अछि, एक मानसिक, शारीरिक अछि अन्य ।
शौच-द्वय संयुक्त पुरुष जे, थिकथि जगतमे धन्य ।।
बहुत मृत्तिका लेपनसौं की, की साबुन मलि भेल ।
की त्रिकाल अवगाहनसौं यदि हृदय विमल नहि भेल ।।१६१।।

शौच धर्म सेवनसौं लोकक हो, तनु हृदय पवित्र ।
बिना शुद्ध भेने की कोनो कर्म सफल हो मित्र ।।
तैं अवश्य तन मनकैं राखब, शुद्ध सभक थिक धर्म ।
शौच पुरस्सर सफल हैत सब, करब अहाँ जे कर्म ।।१६२।।

शोणित मांस अस्थिमय देहक, शुद्ध हएब अतिकष्ट ।
राखी ध्यान हृदय शुद्धिक दिस, हो तैखन मल नष्ट ।।
दैहिक शौच तदपि नहि छाड़ी, अछि ई दैनिक कर्म ।
वाह्य शौचसङ करब उचित थिक, अन्तःशौच सुधर्म ।।१६३।।

जनिक देह मानस नहि निर्मल, होथि यदपि विद्वान ।
नहि सम्मानक पात्र थिकथि से पूरुष मूर्ख समान ।।
शौचहीन मानुषसँ उत्तम, थिक पालित पशु जाति ।
जे रहि अशुचि करै अछि, उपकृति संसारक दिन-राति ।।१६४।।

पुरुष अशुचि रहि कए न सकै अछि, एको शुचि शुभ कर्म ।
कर्महीन नर अघी हेतु अछि सेव्य न कोनो धर्म ।।
अछि अवलम्बित शौच धर्म पर, शास्त्र विहित सभ कृत्य ।
शौच रहित नर शुचि समाजमे, होथि अनादृत नित्य ।।१६५।।

४१. संतोष

जे संतोष सुधासँ नर अछि तृप्त न कर मन शान्त ।
धैर्यवान धृतधारी नरकैं जे हो सौख्य नितान्त ।।
असन्तुष्ट धनलोभी जनकाँ, भए न सकैछ कदापि ।
सारमेयवत् घूमथि निशिदिन होथि न तृप्त तथापि ।।१९६।।

श्वान जकाँ सन्तोषहीन नर, यत्र तत्र नित जाथि ।
जे किछु भेटि गेल घरमे धए पुनि घरसँ वहराथि ।।
असन्तुष्ट नर कतबो पावथि, नहि मनसे सन्तोष ।
जे हुनका किछु देथि, न तकरा शाप देथि कए रोष ।।१९७।।

जे मनुष्य आशाक दास, से थिक संसारक दास ।
जे कएलक आशाकैं दासी तकर दास जग खास ।।
जे ककरहुसँ नहि माँगथि, से पावथि वहु धन रत्न ।
मङनिहारकैं भिक्षा दुर्लभ कैनहु वहुत प्रयत्न ।।१९८।।

दाता कर्ण थिकथि जौं देलक, नहि तौं नीच कदर्य ।
सुख न असन्तोषीकैं कहियो छूटए माङक मर्ज ।।
सन्तोषी नित न्याय सहित जे करथि उपार्जन वित्त ।
ततबहिसौं परिवार भरण कए रहथि अचिन्तित चित्त ।।१९९।।

नहि सन्तोष सदृश धन दोसर, सुख सन्तोषहि बीच ।
से बूझथि की ? धन वहु पौनहु असन्तुष्ट नर नीच ।।
एक भेल तौं दसक अपेक्षा दस भेने शत चाहथि ।
शत भेने सहस्र, से हो तौं लाखक लोभ देखावथि ।।२००।।

४२. धीरता

गुण अनेक रहने की जगमे, जौं न धीरता भेल ।
नर अधीर पुरुषक गणनामे, कहियो गनल न गेल ।।
नहि अधीर जनसौं संसारक भए सकैछ उपकार ।
पुरुषाकार अधीर व्यक्तिकें जानब भूमिक भार ।।२०१।।

धीर पुरुष से थिकथि, विकारक कारण भेलहु प्राप्त ।
हृदय विकृत नहि जनिक कनेको, रहए धैर्य पर्याप्त ।।
धीर पुरुष सङ धैर्यहीनहुक हो निश्चय उद्धार ।
सुजन धीर संकटहुमे रहि, करथि परक उपकार ।।२०२।।

धैर्यहीन मानवसँ हो नहि, किछु विश्वक उपकार ।
अवम अधीर विपत्ति समयमे त्यागथि सत् व्यवहार ।।
किंकर्त्तव्यविमूढ़ भए कानथि, सोचथि अति अकुलाथि ।
करथि न साहस, विपद जालमे फँसि निरुपाय लखाथि ।।२०३।।

धीर पुरुष केहनो विपत्तिमे नहि कौखन घवराथि ।
कए अनेकविध यत्न धैर्यसौं, विपद पार भए जाथि ।।
संकटमे नहि तजथि धीरता, धैर्य राखि सब काज ।
करथि, शीघ्र संकटसौं वाहर भए, मिलि रहथि समाज ।।२०४।।

जे छथि वीर, धीर, से रणमे, पाछाँ पैर न देथि ।
हँटथि न पीठ देखाबथि कहियो सुयश समरमे लेथि ।।
शत्रुक दलकें मारि भगाबथि करथि विजय सम्प्राप्त ।
पुरस्कार पाबथि शासकसौं, यश जगमे हो व्याप्त ।।२०५।।

४३. विद्या

सकल कला कल्याणक कारण, विद्या थीक प्रधान ।
बिन विद्या की हो मनुष्यकें, शुभ कर्त्तव्यक ज्ञान ।।
लौकिक विद्यासौं संसारक हो सभ वस्तुक बोध ।
पारलौकिकी विद्यासौं हो, सकल पाप परिशोध ।।२०६।।

विद्यासौं हो विनय, विनयसौं हो पात्रत्व विशेष ।
पात्रत्वहिसौं धनक प्राप्ति हो, धनसौं धर्म अशेष ।।
सुख सुधर्महिक फल थिक, सुखसौं शान्ति रहए मन छाय ।
शान्ति प्राप्त भेलासौं मानव जन्म सफल भए जाय ।।२०७।।

थिक प्रच्छन्न विभव विद्या ई घटए न कैनहु खर्च ।
बढ़ए नित्य देनहुँ प्रकटित हो सुयश बुद्धिबल वर्च ।।
चोर चोराय सकल नहि कहियो, बाँटि सकल नहि भ्राता ।
छीनि सकथि नहि भूपति, विद्या रत्न सकल सुखदाता ।।२०८।।

मोटरकार जहाज हवाई, पुनि बेतारक तार ।
ग्रामोफोन, रेडियो आदिक जे किछु कला प्रचार ।।
आविष्कार भेल अछि सब किछु, विद्यहिसौं से मानू ।
विद्यहिसौं हो आत्म-बोध दृढ़ वचन सत्य ई जानू ।।२०९।।

विन विद्या संसारक एको, चलि न सकै अछि काज ।
की निर्धन हो, की हो राजा, महाराज अधिराज ।।
की हो बनियाँ सेठि महाजन की हो गृही उदार ।
बिन विद्या बल चलि न सकै अछि लौकिक सुव्यवहार ।।२१०।।

४४. विनय

विद्यासौं हो विनय, विदित अछि ई विद्वानक उक्ति ।
विनय हृदय आभूषण थिक ई, मानू वचन सयुक्ति ।।
प्रबल शत्रु अभिमानक थिक ई, बढ़ि सद्गुणमे एक ।
विनय विभूषित जनक हृदयमे, उपजए विशद विवेक ।।२११।।

विनयी जनक सभामे, सभतरि होइ अछि आदर मान ।
हुनक विनय अनुनय लखि जनता, देथि देश हित दान ।।
दान पावि शुभ कर्म करथि ओ, देशोन्नतिक उपाय ।
स्वार्थ त्यागि परमार्थ हेतु से सहथि कष्ट समुदाय ।।२१२।।

विद्या पढ़ने की फल जौं किछु भेल न विनय विचार ।
निरभिमान विनयी जनसौं हो, संसारक उपकार ।।
देखि नम्रता जीव जगतमे, हो के नहि संतुष्ट ।
सुनि अप्रियो वचन विनयी नर होथि न प्राय: रुष्ट ।।२१३।।

विनय बिना गुण अछि सभ तेहने, जेहन लवण बिनु व्यंजन ।
विनय सहित हित मधुर वचनसौं, हो सभहिक मनरंजन ।।
भक्त शिरोमणि तुलसिदासजी विनयपत्रिका नामक ।
रचि पुस्तक बहुविनय देखाओल, परम भक्त श्रीरामक ।।२१४।।

स्वाभाविक अवगुण अनेकमे, अछि अविनय बड़गोट ।
पैघोलोक विनय बिन जगमे, गनल जाइ छथि छोट ।।
तैं "अविनयमपनय" पद पूर्वहि षट्पदिमे दय देल ।
श्री शंकराचार्यसँ बढ़ि, के जगमे ज्ञानी भेल ।।२१५।।

४५. धन

उचित रीतिसँ धन संग्रह कए, करी विहित सत्कर्म ।
कर्त्तव्यक पालनकए अनुदिन, करी सुरक्षित धर्म ॥
यज्ञादिक शुभकर्म अनेको, विन धन भए न सकैछ ।
दीनजनक साहाय्य सुजन क्यो, विन धन कए न सकैछ ॥२१६॥

अतिथि जनक सम्मान यथोचित, हरिमन्दिर निर्माण ।
विन धन हो न समाजक उन्नति, नहि देशक कल्याण ॥
तेँ धन संचय करव उचित थिक, कए परिमित व्यय नित्य ।
अपन आय अनुसार राखि किछु, करी सकल गृहकृत्य ॥२१७॥

कुमति अनेको हठी एहन छथि, ककरो कहल न मानथि ।
श्राद्ध विवाहादिक सुकार्यमे कर्ज काढ़ि लए आनथि ॥
यशक हेतु अत्यधिक खर्चकए, पूँजी अपन गमावथि ।
किछु दिनमे निर्धन भय, दिन-दिन कष्ट अधिक ओ पावथि ॥२१८॥

सोचि-विचारि करी नित दैनिक खर्च विभव अनुसार ।
थोड़वहुमे की चलि न सकै अछि आवश्यक व्यवहार ॥
"दौड़ि चली नहि ठेसि खसी" ई अछि लोकोक्ति प्रसिद्ध ।
राखथि एहिपर ध्यान अनुक्षण बाल होथि वा वृद्ध ॥२१९॥

धनसौं संकट कटय, धनहिसौं हो अकुलीन कुलीन ।
धने पाबि नीचो हो पूजित, दय बहुदान अदीन ॥
धनसौं बाढ़ि हृदय के दोसर, दैछ बेरिपर काज ।
धन-संग्रह कए धनी बनू, पुनि राखू देशक लाज ॥२२०॥

४६. धर्म

बालक वृद्ध युवा नर नारी जे क्यो मानव जाति ।
धर्मक पालन हेतु रहथु से, सावधान दिन-राति ।।
जकर धर्म जे थीक तकर से पालन करथु अवश्य ।
नित्य नियम पूर्वक स्वधर्मकें पालथु तजि आलस्य ।।२२१।।

क्षण-क्षण शास्त्रक करी सुचिन्तन, कण-कण धनकें जोड़ी ।
तनु अनित्य ई जानि, धर्मसौं नहि कौखन मुँह मोड़ी ।।
की मनुष्य तनु पाबि भेल जौं नहि किछु धर्मज्ञान ।
धर्माचरण बिना विद्वानो, नर छथि पशुक समान ।।२२२।।

अपन सदोषो, धर्मक रक्षा, करी सदा बनि शूर ।
आनक धर्म भयावह थिक तैं रही ताहिसौं दूर ।।
की थिक धर्म अधर्म तकर अछि, निर्णायक सद्ग्रन्थ ।
चलक हेतु सभ जनक, सुमुनिगण, कएल परिष्कृतपन्थ ।।२२३।।

संयम सहित औषधो सेवनसौं हो रोगक नाश ।
संयम भय धर्मक सेवनसौं, हो सब पापक ह्रास ।।
थिक अनुचित, नहि करी कदाचित् काज समाज-विरुद्ध ।
जे कैने तन मन जनकें हो सुख से धर्म विशुद्ध ।।२२४।।

धर्महिसँ हो नरक निवारण, हो अभीष्ट फल प्राप्त ।
धर्महिमे शुभकर्म सकल जग, अछि सुख मूलक व्याप्त ।।
"जनसीदन" धर्मिष्ठ व्यक्तिकाँ हो न कतहु किछु कष्ट ।
निज सुधर्मरत मानव जातिक, सकल विघ्न हो नष्ट ।।२२५।।

बिन शिक्षा पौने नहि जानथि, मानव नीति अनीति ।
की अधर्म की धर्म ककर थिक, की शुभ रीति कुरीति ।।
तैं छात्रक उपकार हेतु हम, ई लघुनीति निवन्ध ।
लिखल सुधारि लेथि सज्जनगण हो जे त्रुटि अनुवन्ध ।।२२६।।
